ISSN 2277 - 7865
Price : 50.00

# तित्थयर

वर्ष : ३६ अंक : १२ मार्च २०१३

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं,
जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है।
जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास
कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।


**Nivesh Invest Pte. Ltd.**

Mumbai-Singapore-Honkong-Shanghai

ISSN 2277 - 7865

# तित्थयर

*श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका*

वर्ष - ३६ अंक - १२ मार्च २०१३

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007

Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,

Email : jainbhawan@rediffmail.com

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --

Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007

Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00

Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा

॥ जैन भवन ॥

# अनुक्रमणिका


| क्र. सं. लेख | लेखक | पृ. सं. |
|---|---|---|
| १. अहिंसा–मानव के सर्वांगीण विकास की पृष्ठभूमि | डॉ. लता बोथरा | ४०१ |
| २. जैनाचार्य वट्टकेर-कृत मूलाचार मनन और मीमांसा | डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य | ४१२ |
| ३. कुवलय माला | | ४२५ |



ISSN 2277 - 7865


**कवरपृष्ठ :** एलोरा की गुफा में उत्कीर्ण देवी अम्बिका की मूर्ति।


**Composed by:**

**Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007**

# अहिंसा
## मानव के सर्वांगीण विकास की पृष्ठभूमि

कुछ सुभटों ने मातृदत्त को भी पकड़ा और राजा के पास ले जाने लगे। इस अकारण विपत्ति से मातृदत्त चकित रह गया और बोला–सुभटों! मेरा क्या अपराध है?

सुभटों ने कहा–सदाचारी! तुम तनिक भी खेद मत करो। राजा से तुम्हें अलभ्य लाभ प्राप्त होगा।

अलभ्य लाभ तो मैं तब समझूँ जब तुम मेरे मित्र वसुदत्त को छोड़ दोगे।

सिपाहियों ने सोचा—कैसा सरल परिणामी है यह! कितना परोपकारी। वे उसकी सदाशयता से प्रभावित हुए और वसुदत्त को छोड़ दिया मातृदत्त से बोले–तुम्हें तो हमारे साथ अवश्य ही चलना पड़ेगा। हम तुम जैसे सदाचारी को नहीं छोड़ सकते।

यह कहकर सिपाही उसे राजा के पास ले गए और सारा वृत्तान्त सुना दिया। राजा वसुतेज ने प्रसन्न होकर उसे अपना कोषाध्यक्ष बना लिया। मातृदत्त सुखपूर्वक काल यापन करता रहा और मरण करके चन्द्राभा नगरी में उत्तम वणिक कुल में उत्पन्न हुआ। पिता ने उसका नाम सिद्धदत्त रखा।

वसुदत्त भी अनेक पाप कर्म करता हुआ कपिल नाम का निर्धन ब्राह्मण हुआ।

अनर्था दूरतो यान्ति साधुवादः प्रवर्तते।<br>
स्वर्गसौख्यानि ढौकन्ते स्फुटमस्तेयचारिणाम्।।75।।

अस्तेयव्रत का आचरण करने वाले पर विपत्तियाँ आ जाने पर भी दूर चली जाती हैं। लोगों में उसे अपनी प्रामाणिकता के लिए

धन्यवाद मिलता है कि यह आदमी प्रामाणिक है। इस लोक में उसकी प्रशंसा होती है, परलोक में भी वह स्वर्गसुख प्राप्त करता है।

**ब्रह्मचर्य महाव्रत :**

गाँधीजी के अनुसार ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन-वचन-काया से सभी इन्द्रियों का संयम करना। ब्रह्मचर्य को सभी धर्मों में विशेष महत्व दिया गया है। अन्य व्रत जिस प्रकार अहिंसा में समाविष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत भी। क्योंकि मैथुन सेवन से असंख्य जीवों का घात होता है अतः सभी प्रकार के मैथुन सेवन का परित्याग करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य की रक्षा में तत्पर व्यक्ति स्त्री संबंधी काम कथा ना करे, उसे वासना की दृष्टि से न देखें, कामुक भावों का प्रसारण न करे, उसके प्रति ममत्व न रखे, मात्रा से अधिक तथा कामवर्धक भोजन न करे और मन को संवृत कर ब्रह्मचर्य की आराधना करे। स्वदार संतोष व्रती व्यक्ति अपनी स्त्री के अलावा पर स्त्री में किसी प्रकार की भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए क्योंकि-

भीरोराकुलचित्तस्य दुःस्थितस्य परस्त्रियाम्।
रतिर्न युज्यते कर्तुमुपशूलं पशोरिव ।।95।।

परस्त्री में रत मनुष्य सदा भयभीत रहता है, उसका चित्त घबड़ाया हुआ सा रहता है, और वह खराब स्थिति में रहता है, इसलिए ऐसे परस्त्रीलम्पट का परस्त्री के पास रहना वैसा ही खतरनाक है, जैसा कि मारे जाने वाले पशु का शूली के पास रहना। मतलब यह कि सद्गृहस्थ का परनारी से नेह करना जरा भी उचित नहीं है।

परस्त्रीगामी मनुष्य घोर नरक में जाता है। जैसे–
विक्रमाक्रान्तविश्वोऽपि परस्त्रीषु रिरंसया।
कृत्वा कुलक्षयं प्राप नरकं दशकन्धरः।।

अपने पराक्रम से सारे विश्व को कंपा दने वाला रावण अपनी स्त्री के होते हुए भी सीता सती को कामलोलुपतावश उड़ाकर ले गया और उसके प्रति सिर्फ कुदृष्टि की, जिसके कारण उसके कुल का नाश हो

गया, लंकानगरी खत्म हो गई। और वह मरकर नरक में गया, इतना बड़ा पराक्रमी भी जब अपने अनर्थ का फल पा चुका तो दूसरे की तो क्या बिसात है कि उसे परस्त्रीगमन का फल नहीं मिलेगा।

इसी प्रकार पूर्ण मन-वचन से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली स्त्री भी सती कहलाती है। जैन साहित्य में ऐसी सोलह सतियों का वर्णन आता है। धर्म कार्य का अधिकारी सिर्फ पुरुष नहीं होता बल्कि स्त्रियाँ भी होती है। इसीलिए चतुर्विध संघ में साध्वी और श्राविका का भी स्थान है। अतः जिस प्रकार ग्रहस्थ पुरुष के लिए परस्त्री सेवन वर्जित है वैसे ही ग्रहस्थ स्त्रियों के लिए भी परपुरुष का सेवन निषेध है।

सब व्रतों में शिरोमणि, उत्तम कल्याणकारी और जिसके पालन करने वाले को देव-दानव सभी नमस्कार करते हैं, वह शील व्रत है। कुलवती स्त्रियाँ इस शील अणुव्रत का पालन करके अपने जन्म-जन्मान्तर को सुधार लेती है। इस नियम को शुद्ध रूप से पालने वाली स्त्री पर कभी विपत्ति नहीं आती। उसका सौभाग्य, सुख, सम्पत्ति निरन्तर बढ़ते ही रहते हैं। सिके विपरीत शीलभ्रष्ट स्त्री इस जन्म में भी भाँति-भाँति के कष्ट पाती है और अगले जन्मों में भी कुरूपा, दुर्गन्धयुक्त शरीर वाली, बन्ध्या आदि होती है। तिर्यंचिनी बनकर बोझा ढ़ोना, पिटना, क्षुधा, तृषा आदि अनेक प्रकार का दुःख भोगती है। दुराचारी, कामी, परस्त्री-लंपट पुरुष भी इसी प्रकार अनेक दुःख पाता है और शीलव्रती सदा सुखी रहता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रती चाहे वह स्त्री हो या पुरुष सिर्फ मनुष्यों द्वारा ही नहीं बल्कि तीनों लोकों में पूजित माना गया है।

प्राणभूतं चरित्रस्य परब्रह्मैककारणम्।
समाचरन् ब्रह्मचर्य पूजितैरपि पूज्यते ।।104।।

अर्थात् देशविरति या सर्वविरति चारित्र के प्राणभूत और परब्रह्म (परमात्मा की) प्राप्ति (मुक्ति) के एकमात्र (असाधारण) कारण, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला मनुष्य सिर्फ सामान्य मनुष्यों द्वारा ही नहीं, सुर, असुर और राजाओं (पूजितों) द्वारा भी पूजा जाता है।

चिरायुषः सुसंस्थाना दृढसंहनना नराः।
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः।।105।।

ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य अनुत्तरौपपातिक देवादि स्थानों में उत्पन्न होने से दीर्घायु, समचतुरस्र संस्थान (डिलडौल) वाले, मजबूत हड्डियों से युक्त-वज्र ऋृषभनाराच नामक संहनन वाले, तेजस्वी शरीर कान्तिमान देह वाले, तीर्थंकर आदि तथा चक्रवर्ती आदि के रूप में महाबलशाली होते हैं।

वर्तमान संदर्भ में यदि ब्रह्मचर्य की उपयोगिता को समझ लिया जाय तो स्त्रियों पर लगातार हो रही बलात्कार की हिंसात्मक घटनाएँ स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। जरूरत है इस महाव्रत की उपयोगिता की शिक्षा के प्रसार की एवं आज की पीढ़ी को उचित प्रकार से समझाने की। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही वह अग्नि है जिसमें तपकर आत्मा परिशुद्ध बन जाती है। इसी कारण प्रश्न व्याकरण में ब्रह्मचर्य को उत्तम तप भी बताया गया है क्योंकि जिसने अपने जीवन में ब्रह्मचर्य की उपासना की है उसने सभी तपों की आराधना की है। ब्रह्मचर्य की साधना देह और आत्मा दोनों को सबल और पुष्ट बनाती है। यहाँ अंहिंसा और सत्य सिर्फ आत्मबल को बढ़ाते है वहीं ब्रह्मचर्य शरीर और आत्मा दोनों को बल प्रदान करती है। पातंजलि ने कहा है कि ब्रह्मचर्य स्थिर होने से वीर्यलाभ होता है और इसीलिए तीर्थंकरों को अनन्त वीर्यवान कहा गया है। डॉ. फर्नेण्डो वेत्लिनी फिलिप ने कहा है **भगवान महावीर के व्यक्तित्व में सर्वप्रधान गुण मेरी दृष्टि में अनन्त वीर्य रहा है और उसी के कारण वे अपने समकालीन मत प्रवर्तकों का रास्ता काटकर आगे बढ़ने में सफल हुए।**

भगवान महावीर ने कहा कि समस्त दुःखों का कारण भोगासक्ति में है। उत्तराध्ययन सूत्र में उल्लेख है कि समस्त भौतिक और मानसिक दुःखों का मूल व्यक्ति की भोगासक्ति में है अतः भोग में संयम आवश्यक है। आत्मा वीर्य शक्ति से युक्त होती है इस शक्ति द्वारा आत्मा कोई भी क्रिया या प्रवृत्ति करने में सक्षम होती है खाना, पीना, सोना, उठना,

चलना, विचारना आदि सभी क्रियाएं इसी शक्ति में निहित होती है। आत्मा में यदि यह शक्ति न हो तो वह निस्तेज होने लगती है। विषय वासना में संयम द्वारा आत्मा का वीर्य निरन्तर स्फुर्तिमान बना रहता है। वीर्य के पतन से आत्मा का पतन होता है। भोगों में संयम तथा चौथे व्रत का पालन में ही एड्स जैसे खतरनाक रोगों से बचने का निदान निहित है।

इन्द्रियों का निग्रह ब्रह्मचर्य का आधारभूत सिद्धान्त है। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति क्लिंटन तक को अपने अमर्यादित संबंधों को लेकर सिर्फ अमेरिका ही नहीं, विश्व जनसमूह का क्रोध और क्षोभ झेलना पड़ा था तथा अन्ततः इसका उन्होंने पश्चात्ताप भी किया जो एक शुभ संकेत है और भगवान् महावीर के चौथे व्रत ब्रह्मचर्य की उपयोगिता और व्यवहारिकता सिद्ध करता है।

**अपरिग्रह महाव्रत :**

संसार के समस्त प्राणी सुखी रहना चाहते है लेकिन सुखी नहीं है क्यों? उनके दुःख का मूल कारण क्या है? जो उन्हें असन्तुष्ट बनाता है। एक धनवान व्यक्ति के पड़ोस में एक निर्धन व्यक्ति रहता था जो रोज जो भी कमाता वह उसी से अपने परिवार का निर्वाह करता और चैन की नींद सोता। जबकि धनवान व्यक्ति को नींद नहीं आती वह चिन्ता में घुला जाता। उसने एक ज्ञानी पुरुष से इसका कारण पूछा कि मेरा पड़ोसी निर्धन होते हुए भी सुख की नींद सोता है और मैं धनवान होकर भी चैन की नींद नहीं सो पाता। उस ज्ञानी पुरुष ने उससे कहा कि निन्यानबे रुपये की थैली निर्धन व्यक्ति को दे दो तब तुम्हें समझ में आ जाएगा। उस धनवान पुरुष ने वैसा ही किया। दूसरे दिन प्रातःकाल निर्धन व्यक्ति को अपनी झोपड़ी के पास निन्यानबे रुपये की थैली मिली तो उसने सोचा कि अब इसे सौ रुपये करने चाहिए, इसके लिए उसने दिन-रात एक करके सौ रुपये पूरे किए। सौ रुपये होने पर उसे और बढ़ाने के लिए उसकी लालसा तीव्र होती गयी और इस चिन्ता में उसकी नींद खाना-पीना सब अव्यवस्थित हो गया। परिणामस्वरूप वह दुर्बल हो

गया। कुछ दिन बाद धनी व्यक्ति ने देखा कि वह निर्धन व्यक्ति अब पहले जैसा नहीं है दिन-रात उसे और रुपये जमा करने कि चिन्ता लगी रहती है। कारण वह निन्नान्बे के फेर में पड़ गया था। यह उदाहरण हमें हमारे दुःखों के कारण को स्पष्ट करता है और परिग्रह का त्याग ही दुःख निवारण का सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाता है।

परिग्रह के कारण ही व्यक्ति असत्य, चोरी, और हिंसात्मक कार्यों को करने में सकुचाता नहीं है। यहाँ तक कि अर्थ के लिएं दूसरों को कष्ट देता है, यातनाएं पहुँचाता है तथा वध भी कर देता है। अतः संग्रह ही सब अनर्थों की जड़ है। परिग्रह वृति के कारण आज सारा संसार अशान्त है, जीवन दुःखी और अतृप्त है।

परिग्रहमहत्वाद्धि मज्जत्येव भवाम्बुधौ।
महापोत इव प्राणी त्यजेत्तस्मात् परिग्रहम्।।107।।

जैसे अधिक वजन हो जाने पर जहाज़ समुद्र में डूब जाता है, वैसे ही प्राणी परिग्रह के बोझ के कारण संसाररूपी समुद्र में डूब जाता है। इसलिए परिग्रह का त्याग करना चाहिए।-

असंतोषी मनुष्य चाहे वह बड़े से बड़ा राजा हो या धनवान श्रेष्ठी हो वह कभी भी सुखी नहीं हो सकता लेकिन जो संतोषी होता है वही साधुत्व प्राप्त कर सकता है। भगवान महावीर के समय मगध के सम्राट श्रेणिक के पुत्र अभय कुमार ने राज्यपद को ठुकराकर दीक्षा ग्रहण की। इसी लिए कहा गया है कि जिसके पास संतोष रूपी आभूषण है उसके पास सब निधियाँ स्वतः ही आ जाती है और देवता भी दास बनकर उनकी सेवा करते हैं। आनन्द श्रावक ने जिसके पास अतुल सम्पत्ति थी--4 गोव्रज थे, 4 करोड़ सम्पत्ति थी, 4 करोड़ स्वण मुद्राएं जमीन में गढ़ी रहती थी, तथा 4 करोड़ ब्याज में। भगवान् महावीर के उपदेश से उसने पंच महाव्रतों, 3 गुणव्रतों और 4 शिक्षाव्रतों को ग्रहण किया जिसके फलस्वरूप निर्दिष्ट परिमाण के अतिरिक्त जितना भी धन अर्जित किया जाता है उसे समाज कल्याण के लिए व्यय कर देना होता है। उसे वह संग्रह नहीं करके रख सकता या उसका भोग नहीं

कर सकता। धन के साथ साथ अन्न वस्त्र आदि दैनिक उपयोग की वस्तुओं का भी परिमाण रखा जाता है। इन व्रतों के पालन का उद्देश्य सही रूप में लोक कल्याण तथा लोकतन्त्र की सफलता ही नहीं वरन् सामाजिक और आर्थिक और पर्यावरण की समस्या का भी उचित निदान है।

ऐसे अनेकों उदाहरण है जिनमें श्रावक निश्चित परिमाण से अधिक धन-संपत्ति आदि का दान कर देते है या दूसरों की भलाई के लिए उपयोग में लाते है, ऐसा करने से स्वयं के साथ-साथ समाज, राष्ट्र और समस्त मानवता का उपकार करते हैं। इसके साथ ही संग्रह व्यक्ति के दोषों से भी बच जाते हैं।

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह है। ये पाँचों महाव्रत शाश्वत और सनातन तत्त्व है तथा जीव-जगत की रक्षा एवं विकास के लिए इनका पालन अनिवार्य है। ये उस प्रकाश की भाँति है जो तीनों लोकों के अन्धकार को नष्ट कर देता है तथा कषायों को दूर करता है। ये हमारी आत्मा अनन्त काल से कर्मों से आवृत्त है तथा आत्मा को इन कर्मों से मुक्त करने के लिए अपने कषायों को जीतने के लिए इन महाव्रतों का पालन किया जाता है। यह आत्मा से परमात्मा बनने का सबसे उत्कृष्ट तथा सुलभ पथ है जिसे तीर्थंकरों ने दिखाया। तीर्थंकर अनन्त ज्ञानी और अनन्त दर्शी थे। उन्होंने चारों दिशाओं में जो त्रस और स्थावर प्राणी है उनके नित्य और अनित्य रूप को जानकर उनके जीने के लिए इन शाश्वत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिनका मूल आधार अहिंसा था। इसीलिए तीर्थंकरों को महान एवं यथार्थवादी कहा जाता है। आचार्य समन्तभद्र भगवान् महावीर की स्तुति करते हुए आत्म मीमांसा में कहते है **देवागम मुभैयादि चामरादयः विभुतयः। मायाष्वपि दृश्यन्तेनातस्वतवमपि ते महान। सत्वमेवसरित निर्दोषों युक्तिशास्त्रविरोधिवाक् अविरोधो यदिष्ट ते प्रसिद्धेन नो बाध्यते** अर्थात् हे भगवन्, आपके पास देवों का आगमन होता था, छत्र चामर की विभुति थी, इन कारणों से आप महान् नहीं थे क्योंकि देवों का

आगमन मायावी पुरुष के पास भी हो सकता है, परन्तु आप महान् इसलिए थे क्योंकि आपकी वाणी में यथार्थ था, आप अन्यथा भाषी नहीं थे, रागादि दोषों से रहित थे। भगवान् महावीर यथार्थवादी थे। भगवान महावीर ने सर्वज्ञ होने के बाद जिस यथार्थवाद का उपदेश जनता को दिया वह चाहे पारिवारिक क्षेत्र हो, धार्मिक क्षेत्र हो, व्यापारिक क्षेत्र हो, राजनैतिक क्षेत्र हो या औद्योगिक क्षेत्र हो, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी सफलता का अमोघसूत्र के रूप में अहिंसा के रूप में सामने आया। तीर्थंकर महावीर ने मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का जो मार्ग अहिंसा के रूप में विश्व को दिया उसमें जीवन के सभी क्षेत्रों की समस्याओं का निदान निहित था न वह कोई राजनीतिक दर्शन था, न कोई पारिवारिक आर्थिक योजना उन्होंने पंचमहाव्रत के पालन और उसमें अनेकान्तवाद का समावेश करते समस्त समस्याओं का हल दिया। **Sophist** विचार जिनकी विचारधारा का मूल केन्द्र मानव था। अरस्तू जिन्हें **Father of Social Science** कहा जाता है। प्लेटो ने अपनी किताब 'रिपब्लिक' में संग्रह और आसक्ति से दूर रहने के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उसके बाद -यूरोपीय दार्शनिकों ने कार्लमाक्स आदि विद्वानों ने जो सामाजिक दर्शन दिया तो वे केवल महाव्रतों के सिद्धान्तों के गौण पहलुओं को ही बता पा रहे थे। आदि तीर्थंकर के बाद इन पाँच महाव्रतों को विकसित और समय-समय पर परिष्कार करने का श्रेय तीर्थंकरों को जाता है ये सभी तत्त्व एक दूसरे के पूरक तथा मानव जीवन के आधारभूत तत्त्व है जिनका पुनः उद्घोष आज से छब्बीस वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने किया था। देखा जाय तो भगवान महावीर का जीवन चरित्र अहिंसा का पूर्ण दर्शन प्रस्तुत करता है उनके जीवन का एक-एक घटनाक्रम अहिंसा को ही परिलक्षित करता है।

महावीर का तत्त्वदर्शन आत्म विकास के लिए था और आत्म विकास द्वारा ही मनुष्य जीवन सफल हो सकता है। हे मनुष्य तू ही मेरा मित्र है बाहर क्या खोजता है। सामायिक प्रतिक्रमण के रूप में तीर्थंकरों ने ध्यान का उपदेश दिया था और ध्यान द्वारा ही मनुष्य

आत्मा को बांधने वाली सब कषाओं की ग्रन्थियों को खोल सकता है और जब ये ग्रन्थियाँ खुल जाती है तब मानव के आचरण में अहिंसा का समावेश हो जाता है। आदि संस्कृति के प्रणेता ऋषभदेव स्वामी ने हजारों वर्षों पहले इस बात को समझ लिया था। इसमें समय के अन्तराल में आई शिथिलताओं को महावीर ने झकझोरा और समता की प्राप्ति हेतु ध्यान की प्रक्रियाँ को परिमार्जित कर उसका जीवन में उपयोग बताया। इस प्रकार संसार की सारी साधना, और ध्यान का केन्द्र बिन्दु आत्मा में समता है और व्यवहार में अहिंसा है। जहाँ न राग है न द्वेष केवल चित्त की एकाग्रता है। भगवान महावीर के अपरिग्रह के सिद्धान्तों को जब-जब विश्व ने भुलाया तब-तब उसे विनाश के कगार में पाया गया। भगवान के जीवों और जीने दो तथा परस्परोपग्रह जीवानाम के सिद्धान्त की अवहेलना अठारवीं सदी के अन्त तथा उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में उद्योगिक क्रान्ति से उपजे व्यक्तिवाद ने की। परिणाम स्वरूप विश्व को प्रथम महायुद्ध की विभीषिकाओं से गुजरना पड़ा। मानव का शोषण, साधनों का अनैतिक दोहन, उपनिवेशवाद की आड़ में साम्राज्यवादी सिद्धान्त शासन सूत्र की प्रभावी शैली बन गयी थी। लोग ऑफ नेशन्स की इसको रोक पाने में असमर्थता रही और इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधान मंत्री चैम्बरलेन ने जब म्युनिख में घुटने टेक दिए तो विश्व का भविष्य द्वितीय महायुद्ध के आगोश में जा चुका था। यह केवल राष्ट्रों की दुर्दशा ही नहीं वरन् निकायों का प्रबन्धन भी इससे ग्रसित था और सन 1938 की मन्दी में हजारों कंपनियों व उद्योग दुनिया के नक्शे से मिट गये।

आज राजनैतिक और सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओं की सफलता का सबसे बड़ा आधार है स्थायी शान्ति, जो भगवान् महावीर के सिद्धान्त ही विश्व को दे सकते थे। यह विश्व कल्याण का एक सशक्त पहलू था कि यूरोप के देशों में जब युद्धों के दौर से गुजर रहे थे तो यह सिद्धान्त मध्यपूर्व के दार्शनिकों के जरिए काफी हद तक वहाँ की मिट्टी में प्रस्फुटित हो चुके थे। इसी का परिणाम था, प्रथम महायुद्ध के बाद अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विलसन के प्रयासों से लीग ओफ

नेशन्स की स्थापना। विलसन जानते थे कि युद्ध से स्थायी शान्ति प्राप्त नहीं की जा सकती है। लेकिन लीग ऑफ नेशन्स यदि विश्व को स्थायी शान्ति नहीं दे सकी तो इसका दोष इन सिद्धान्तों को नहीं वरन् उनके क्रियान्वयन को जाता है। विश्व के इन घटनाक्रमों में एक नया सैद्धान्तिक प्रयोग महावीर के सिद्धान्तों को आधार को मानकर गाँधीजी द्वारा किया गया। पंथ महाव्रतों सत्य देने की अगर किसी ने ईमानदारी से कोशिश की है तो वह गांधी जी थे। जिन्होंने इन सिद्धान्तों को असली जामा पहनाकर अन्तर्राष्ट्रीय जगत को अचम्भे में डाल दिया। महावीर के इन सिद्धान्तों की उपयोगिता का रहस्य उन्हें श्रीमद् राजचन्द्रजी से मिला। जिन्हें वे अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। इसके साक्षी वे पत्र हैं जो उनके बीच लिखे गए। **गांधीजी ने कहा जो स्वयं के कर्त्तव्य जानने के लिए उत्सुक है उन्हें श्रीमद् के लेखों से बहुत कुछ मिल जायेगा मुझे ऐसा विश्वास है। गाँधीजी ने आजादी का आन्दोलन इन्हीं आधारभूत सिद्धान्तों पर संचालित किया। लाठी लेकर चलने वाले और लंगोट पहनने वाले इस महात्मा ने अपने अहिंसक आचरण और कुशल नेतृत्व द्वारा अंग्रेजों को झुकने पर मजबूर कर दिया। गाँधीजी ने अहिंसा के विषय में लिखा है कि**— No religion of the world has explaned the principle of Ahimsa so deeply and scientifically as is discussed in its applicability to every day life in Jainism. As and when the benevolent principle of Ahimsa or non violence will be searched for practice by the people of the world Jainism is sure to have the uppermost status and Lord Mahavira is sure to be respected as the greatest authority on Ahimsa, भगवान् महावीर की अहिंसा को कायरता की संज्ञा देने वाले विश्व के कुछ विद्वान अहिंसा की सही परिभाषा खोजने के भ्रमजाल में सदियों तक पड़े रहे और इस बीच विश्व भूल गया अहिंसा का यथार्थ रूप। मन वचन और काया से किसी को नुकसान न पहुँचाना केवल अहिंसा का एक हिस्सा है। यदि विश्व ने हिटलर और

मुसोलिनी के प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनायी तो आगे चलकर द्वितीय विश्वयुद्ध के रूप में उसका खामियाना चुकाना भी पड़ा। यदि उद्योग, व्यापार-वाणिज्य में गलत नीतियों या गलत लोगों के सामने समर्पण किया। तो वे सदा के लिए विश्व के नक्शे से मिट जाएगें। न्याय, सत्य, अहिंसा, अचौर्य और अपरिग्रह के भगवान् महावीर के सिद्धान्तों को जब-जब तिरोहित करने की कोशिश की गयी तब-तब विश्व को इसकी कीमत चुकानी पड़ी।

These facets of Mahavira's philosophy is based on scientific outlook. The fecundity of Jain philosophy and its culmination in non-violence is based deeply on a Globalised view point. If we need peace, we ought to know about the facets of Jaina philosophy. Through the doctrine of Vardhamana Mahavira one can reach the pinnacle of global peace.

# जैनाचार्य वट्टकेर-कृत 'मूलाचार'

## मनन और मीमांसा

डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य

भारतीय दर्शन के अन्तर्गत जैन चिन्तन व चेतना की आर्ष धारा अपने सुविशाल तत्त्वपरक तथा सर्जनात्मक वाङ्मय के द्वारा वैदिक परम्परा के समान्तराल अपनी साधनात्मक परम्परा को प्रस्तुत व सम्प्रेषित करती रही है। जैन शास्त्रज्ञ तपस्वी मनीषियों द्वारा रचित वाङ्मय ने भारतीय चिन्तन व मनन को एक व्यावहारिक तथा सर्वथा मौलिक दिशा प्रदान की है। निर्ग्रन्थ धारा से सम्पृक्त इस चिन्तन व दर्शन-प्रक्रिया ने वैराग्यपूत साधनात्मक आत्मान्वेषण की राह पकड़ी और भारतीय संस्कृति में जैन दर्शन तथा चिन्तन ने अपना अंति महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

जैन शास्त्रग्रन्थों में वीतरागी, कठोर तपस्वी मुनियों के आचार-संहितापरक मार्गदर्शन के निमित्त **मूलाचार** नामक ग्रन्थ का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। दिगम्बर आम्नाय का यह सुप्राचीन शास्त्रग्रन्थ लगभग द्वितीय शताब्दी के समयकाल का माना गया है।[1] विद्वानों के अनुसार लगभग 79 ई. के आस-पास दिगम्बर आगमों की रचना हुई।[2] आगम शास्त्रग्रन्थों में मुनिचर्या को उसकी आचार संहिता के आलोक में यह ग्रन्थ सम्प्रेषित करती है। मुनिधर्म प्रतिपादक शास्त्रा में **मूलाचार** का स्थान सर्वोपरि माना गया है। दिगम्बर आम्नाय के शास्त्रग्रन्थों में **मूलाचार** को सर्वाधिक प्रामाण्य माना गया है।

---

1. शास्त्री, डॉ. मृत्युंजय, मूलाचार का ऐतिहासिक सन्दर्भ, केवली प्रकाशन, 1989, पृष्ठ 203 और देखिए 'Prolegomena to Prakriticaet Jainica, ed. by Dr. Satyaranjan Bannerjee, The Asiatic Society, 205, page, 199-224
2. देखिए, मालवणिया, पं. दलसुखभाई, आगम युग का जैन दर्शन, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 19-35 और दिगम्बरत्व पर एक दृष्टि, पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर, आचार्य देशभूषण मुनि संघ प्रबन्धक समिति, कोलकाता।

'The Textuality and its inherent principles, depicting the 'weltanschung' of the Agamic rules, picturise 'Mulachara' as one of the most specific regulatory guide of monastic disciplines according to the Digambara Jaina Canon. The indepth analysis of the disciplines thereto reflect the psychic and intellectual foci of this highly protected age old monasticism.'[3]

आद्य शास्त्रीय स्थापनाओं के सन्दर्भ में 'मूलाचार' का स्थान अत्यन्त विशिष्ट है। 1243 गाथाओं में निबद्ध तथा द्वादश अधिकारों में विभक्त, प्राकृत में रचित यह ग्रन्थ कई प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ टीकाकारों द्वारा समर्थित है। अपने समय में उपलब्ध प्रायः सम्पूर्ण जैन साहित्य का गंभीर आलोढ़न करने वाले आचार्य वीरसेन ने 'षट्खण्डागम' सिद्धान्त की अपनी सुप्रसिद्ध 'धवला' टीका (रचनाकाल: 780 ई.) में उक्त 'मूलाचार' के उद्धरण 'आचारांग' नाम से प्रदर्शित किया है। इससे उसका आगमिक महत्त्व भी स्पष्ट होता है। शिवार्य (प्रथम शती ई.) कृत 'भगवती आराधना' की अपराजित सूरि विरचित विजयोदशा टीका (समयकाल लगभग 700 ई.) में 'मूलाचार' के कतिपय उद्धरण प्राप्त हैं और यतिवृषभाचार्य (दूसरी शती ई.) कृत 'तिलोयपण्णति' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) में भी मूलाचार का नामोल्लेख हुआ है। मूलाचार के सर्वप्रथम ज्ञात टीकाकार आचार्य वसुनन्दि सैद्धान्तिक (समयकाल लगभग 1100 ई.) ने अपनी आचारवृत्ति नामक संस्कृत टीका की उत्थानिका में घोषित किया है कि ग्रन्थकार * * * ने गणधरदेव रचित बारह अधिकारों में उपसंहार करके उसे मूलाचार का रूप प्रदान किया है।[4]

---

3. Sreenivasa, J.N., Digambaras : A Study in Historicity, p.14 तथा सहायक रूप में देखिए, A History of the Rashtrakutas of Malkhed and Jainism' by Prof. Hampa Nagarajaiah, 2000, Bangalore.

4. मूलाचार, (सिद्धान्तचक्रवर्ती वसुनन्दि-कृत आचार वृत्ति सहित, 1984 भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पृष्ठ, 5

धर्मचिन्तन तथा आदर्श, आचार-संहिता के द्वारा नित्य पालनीय होकर प्रामाण्य माना जाता है। भारतीय दर्शनचेतना की यह मूलगत विशेषता है कि दर्शन यहाँ केवल बौद्धिक व्यायाम नहीं, बल्कि दिन-प्रतिदिन के आचरण की कसौटी में कसकर खरा उतरता हुआ एक जीवन-दर्शन, जीवन-दृष्टि है। जैन मुनि की आचार-संहिता को भी 'मूलाचार' में दिग्दर्शित करवाते हुए इसका वर्णन किया गया है। वस्तुतः दिगम्बर, जैन वाङ्मय में मुनियों के आचार का सांगोपांग वर्णन करनेवाला यह प्रथम ग्रन्थ है।

**मूलाचार : ग्रन्थ परिचय :**

'मूलाचार' शास्त्रग्रन्थ प्राचीन परम्परानुसार द्वादश अंगों (द्वादशाधिकार) में विभाजित है। इसे 'आचारांग' भी कहा जाता है तथा मूलाचार को श्रुतस्कंध का आधार भी माना गया है। (श्रुतस्कन्धाधारभूतमष्टा-दशपदसहस्रपरिमाणं)।[5] संक्षेप में मूलाचार के बारह अंगों का परिचय दिया जा रहा है–

**1. मूलगुणाधिकार**— अलग-अलग गाथाओं में सम्प्रेषित अंश में मूलगुणों के नाम बतलाकर प्रत्येक के लक्षण पर प्रकाश डाला गया है। तदनन्तर इन मूलगुणों को नियमित पालते रहने से कौन से 'फलोद्रेक' (फल-प्राप्ति) होते हैं, यह निर्धारित किया गया है। मूलगुणों के विषय पर आलोकपात करते हुए टीकाकार आचार्य वसुनन्दि लिखते हैं–

'मूलगुणैः शुद्धिस्वरूपं साध्यं, साधनमिदं मूलगुणशास्त्रं[6]'—अर्थात् इन मूलगुणों से आत्मिक शुद्धस्वरूप को साध्य माना गया है, तथा मूलाचार शास्त्र को उसका साधन कहा गया है।

---

5. श्रीवट्टकेराचार्यविरचितो मूलाचारः (श्रीवसुनंदिसिद्धान्तचक्रवर्तीविरचितया आचार वृत्त्या सहितः) मूलगुणाधिकारः, सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री तथा डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य सम्पादित, आर्यिका ज्ञानमती अनुदित, पृष्ठ 1 (मंगलाचरण), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
6. अधिक जानकारी के लिए देखिए, मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी।

2. **बृहत् प्रत्याख्यान-संस्तरस्तवाधिकार—** इस भाग में पापयोग के प्रत्याख्यान-त्याग का कथन है। जैन साधना में समाधिमरण का महत्त्व सर्वोपरि है। आजीवन जैन मुनि अपने व्रताचार तथा तपस्यापूत जीवनशैली के द्वारा जिस उच्च चारित्रिक दृढ़ता को प्रतिफलित करते हैं, जीवन के समापन में भी सम्पूर्ण पुरुषार्थ के द्वारा वे अन्न-जल का त्याग कर लेते हैं, तथा पूर्ण चेतनावस्था में, बिना किसी मानसिक और शारीरिक विकार के–अपना प्राण त्याग देते हैं। तभी तो प्राचीनतम काल से आज तक, जैन साधक परम्परा में 'समाधिमरण', 'सल्लेखना', 'संथारा' आदि कई नामों से यह आचार, विशेष उत्साह और गौरव के साथ असंख्य तपस्वियों द्वारा आचारित हुआ है। कहा गया है—

**'समाधिमरणादीनां फलं प्राप्तान् जिनादिकान्।**
**समाधिमृत्युसिद्ध्यर्थं वंदे पंच महागुरुन्' ।।**[7]

इस भाग में भी दिगम्बर जैन मुनियों के द्वारा समाधिमरण की प्रक्रिया और प्रकारों पर सम्यक प्रकाश डाला गया है।

3. **संक्षेप प्रत्याख्यानाधिकार—** इस अधिकार के अन्तर्गत अति संक्षेप में पापों के त्याग का उपदेश प्रदान किया गया है। दस प्रकार के मुण्डन का भी अच्छा वर्णन है।

4. **समाचाराधिकार—** समाचार चर्या जैन साधुओं द्वारा दिन से रात तक की आचार-संहिता, अर्थात् 'चर्या' को कहते हैं। शास्त्रमतानुसार इसके औघिक और पद विभागी ऐसे दो भेद किए गए हैं। तदनुसार औघिक के दस भेद और पदविभागी के अनेक भेद किए गए हैं। इस अधिकार के अन्तर्गत आजकल के मुनियों को एकलविहार करने से निषेध किया गया है। साथ ही आर्यिकाओं की चर्या पर भी इस अधिकार में प्रकाश डाला गया है। उनके आचार्य कैसे हों, इस पर भी सम्यक रूप से प्रकाश डाला गया है।[8]

5. **पंचाचाराधिकार—** इस अंश में दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चरित्राचार, तप-आचार और वीर्याचार इन पंच आचारों का बहुत ही सुन्दर विवेचन है।

---

7. आचार्य सकलकीर्ति प्रणीत समाधिमरणोत्साहदीपक, आद्यश्लोक (1)
8. पियधम्मो दढधम्मो संविग्गोऽवज्जभीरु परिसुद्धो। संगहणग्गहकुसलो सददं सारक्खणाजुत्तो।।83।। गंभीरो दुद्धरिसो मिदवादी अप्पकोदुहल्लोय। चिरपव्वइदो गिहिदत्थो अज्जाणं गणधरो होदि।।84।।

6. **पिंडशुद्धि-अधिकार—** इस अधिकार में उद्‌गम, उत्पादन, एषणा, संयोजना, प्रमाण, अंगार, धूम और कारण इन आठ दोषों से रहित पिण्डशुद्धि होती है। उद्‌गम के सोलह, उत्पादन के सोलह, एषणा के दस, कुल मिलाकर बयालीस (42) दोष होते हैं। मुनि इन बयालीस दोषों के अलावे संयोजना, प्रमाण, अंगार और धूप ये चार और दोषों की चर्चा भी करते हैं। इस प्रकार, कुल बयालीस दोषों को टालकर, बत्तीस अन्तरायों का त्यागकर जैन मुनि आहार ग्रहण करते हैं। आहार ग्रहण तथा आहार वर्जन के कारणों को इस अंश में विस्तार से विवेचित किया गया है।

7. **षडावश्यकाधिकार—** इस अंश में 'आवश्यक' शब्द का अर्थ बतलाते हुए समता, चतुर्विंशति स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग आदि छह आवश्यक (षड्‌आवश्यक) क्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।

8. **द्वादशानुप्रेक्षाधिकार—** बारह अनुप्रेक्षाओं का इसमें वर्णन है। इन अनुप्रेक्षाओं में आचार्य ने षष्ठ अनुप्रेक्षा में लोकानुप्रेक्षा को रखा है। सप्तम अनुप्रेक्षा से अशुभ अनुप्रेक्षा को रखा गया है तथा उसी अशुभ-लक्षण को आगे निरूपित किया गया है।

9. **अनगारभावनाधिकार—** इस अंश में जैन मुनियों की चर्या का वर्णन किया गया है। जैन मुनि अपने दिन-प्रतिदिन की चर्या के अन्तर्गत असंख्य नियमों का ध्यान रखते हैं। इस अंश पर टिप्पणी करते हुए डॉ. राजेन्द्रन लिखते हैं–

"Anagarabhavanadhikara is a section essentially focussing on the charya (daily monastic discipline of practices and duties) of the monks also clarifies on the yoga part too."[9]

अभ्रावकाश आदि योगों का इसमें वर्णन हैं।

10. **समयसाराधिकार—** चारित्रशुद्धि के प्रधान कारणों (हेतुओं) का यहाँ विवरण तथा विवेचन पाया जाता है। चार प्रकार के लिंग तथा

---

9. Rajendran, Dr. P.T., The Thoughts of the Soul : Jain Canons and Mulachara,' Navneet Book Agency, 1992, page - 20

दस प्रकार के स्थितिकल्प का भी अच्छा विश्लेषण किया गया है। स्थितिकल्पों के जिन दस प्रकारों की चर्चा की गई है, उसमें प्रमुख हैं- 1. अचेलकत्व, 2. अनौद्देशिक, 3. शैयागृहत्याग, 4. राजपिंडत्याग, 5. कृतिकर्म, 6. व्रत, 7. ज्येष्ठता, 8. प्रतिक्रमण, 9. मासस्थितिकल्प और 10. पर्यवस्थितिकल्प है।

11. **शीलगुणाधिकार**— 18 हजार शील से सम्बन्धित भेदों का इस अंश में विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके अलावे 84 लाख उत्तरगुणों का भी इसमें उल्लेख है।

12. **पर्याप्त्यधिकार**— आलोच्य अंश में जीव की छह पर्याप्तियाँ बताते हुए संसारी जीव के अनेक भेद-प्रभेदों का उल्लेख किया गया है। जैन मतानुसार अगर जीव– भेद के बारे में सही तथा आभ्यंतरीण भेदों की जानकारी मिलें, तो जानकर उनकी सम्यकरूपेण चर्चा करते हुए उसकी रक्षा की जा सकती है। इसके बात कर्म प्रकृति के क्षय का विधान दिया गया है। इस बारे में जैनमतानुसारी दृष्टि यह कहती है कि–

" The essence and effect of 'Mulachara' as one of the most important Digambara Jaina Canonical texts has been related with distinctive differential facades regarding the entity of the mundane life. To study indepth about Mulachara and its effect thereto is to imbibe the basic qualitative facades (the Mulagunas), thereby to foster post qualitative dimensions and inculcate and imbibe thereto. Its study proves its effect by dismantling and the dislocation of the accumulated Karmic bonds"[10]

आर्यिका ज्ञानमती भी इसी संदर्भ में कहती हैं– ........"जीवों के नाना भेदों को जानकर ही उनकी रक्षा की जा सकती है। अनन्तर कर्म प्रकृतियों के क्षय का विधान है। क्योंकि मूलाचार ग्रन्थ के पढ़ने का फल, मूलगुणों को ग्रहण करके अनेक उत्तरगुणों को भी प्राप्त करना है। पुनः तपश्चरण और ध्यान विशेष के द्वारा कर्मों को नष्ट कर देना ही इसके स्वाध्याय का फल हैं।"[11]

---

10. देखिए, Ibid, statements on the life of monks and its socio. philosophical effect, pages 62-63.
11. मूलाचार (श्रीवट्टकेराचार्य विरचितो), आद्य उपोद्घात, आर्यिका ज्ञानमती प्रणीत, पृष्ठ 12

'मूलाचार' शास्त्रग्रन्थ के विभिन्न अधिकारों के दिग्दर्शन के द्वारा हम इस ग्रन्थ की आध्यात्मिक तथा साधनात्मक मनीषा के बारे में जान सकते हैं। 'स्वाध्याय' को प्रधान उपादान मानते हुए जब 'मूलाचार' का विधिवत् पारायण किया जाता है, तब कई आचार संहितापरक नियमों व आयामों का ग्रन्थिमोचन सहज ही हो जाता है। कुछ एक की प्रसंगवश यहाँ चर्चा की जा रही है।

**(क) साधक (साधु) के भगवदत्त्व की प्रतिष्ठा तथा प्रतिष्ठापक आचार-संहिता-**

जैन चिन्तन ने स्वात्मनुभूति के द्वारा प्राप्त उपलब्धि तथा मानबत्व को देवत्व के सम्पूर्ण सम्भावित यथार्थ तथा अनुभूत्यात्मक सत्य तक पहुँचाने में ही सिद्धि के अन्तर्निहित सोपान निर्धारित किए हैं। अगर 'पिण्ड में ब्रह्माण्ड' की सम्भावित परिणति का तात्त्विक स्वरूप सामने रखा जाए, तो यह 'कथनी' में नहीं, 'करनी' में होनी चाहिए। तीर्थंकरत्व व्यक्ति की आत्मिक ऊर्जा की सर्वोत्तम परिणति है, उसका चरम विकास है। साधु ही जीवन्त विग्रह है, उस आदर्श का, जिसे अपनी आचार-संहिताओं के दैनन्दिन पालन व तपश्चरण के द्वारा वे हर क्षण प्रमाणित, प्रतिपादित करते दिखाई देते हैं। दिगम्बर जैन आम्नाय के अन्तर्गत अन्यतम प्रधान शास्त्रग्रन्थ के रूप में स्थापित 'मूलाचार' में भी 'सुस्थित' साधु को 'भगवान' की संज्ञा दी गई है।

**भिक्खं वक्कं हिययं साधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।**
**एसो सुट्ठिद साहू भणिओ जिणसासणे भयवं।।**[12]

'भगवदत्त्व' (भगवत् स्वरूपत्त्व) को प्रतिपादित करनेवाले साधु-'चतुष्पालनीय' आचार संहिता के निर्विवाद आदर्श के जीवन्त प्रतीक होत हैं। आहार-शुद्धि, वचन-शुद्धि तथा मन की शुद्धि रखते हुए जो सदा ही चारित्र का पालन करता है, जैन शासन में ऐसे साधु को 'भगवान' संज्ञा से अभिहित किया गया है। ऐसे महामुनि चलते-फिरते भगवान हैं।

इस विषय के साथ सीधे सम्पृक्त है जैन मुनियों के अहोरात्र पालनीय कृतिकर्म, जिसका संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

कहा गया है—
चत्तारि पडिक्कमणे किदियम्मा तिण्णि होंति सज्झाए।
पुव्वण्हे अवरण्हे किदियम्मा चोद्दसा होंति।।[13]

12. वही, (षडावश्यक अधिकार) आद्य उपोद्घात, पृष्ठ 14
13. वही, (षडावश्यक अधिकार), श्लोक 602, (मू. आ.) पृष्ठ 44।

अर्थात् चार प्रतिक्रमण में और तीन स्वाध्याय में (कुल सात कृतिकर्म) तथा पूर्वाह्न और अपराह्न के चौदह कृतिकर्म होते हैं। टीकाकार वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती इसका विवेचन करते हुए कहते हैं-

'सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गश्चतुर्विंशतितीर्थंकरस्तवपर्यन्तः कृतिकर्मेत्यच्युते। प्रतिक्रमणकाले चत्वारि क्रियाकर्माणि स्वाध्यायकाले च त्रीणि क्रियाकर्माणि भवंत्येवं पूर्वाह्ने, क्रियाकर्माणि सप्त तथाऽपराह्ने च क्रियाकर्माणि सप्तैवं पूर्वाह्नेऽपराह्ने च क्रियाकर्माणि चतुर्दश भवंतीति।'।[14]

अर्थात्, पिछली रात्रि में प्रतिक्रमण में चार कृतिकर्म, स्वाध्याय में तीन और देववन्दना में दो, सूर्योदय के बाद स्वाध्याय के तीन, मध्याह्न देववन्दना के दो, इस प्रकार पूर्वाह्न सम्बन्धी कृतिकर्म चौदह हो जाते हैं। पुनः अपराह्न वेला में स्वाध्याय के तीन, प्रतिक्रमण के चार, देववन्दना के दो, रात्रियोग ग्रहण सम्बन्धी योगभक्ति का एक और प्रातः रात्रि योग निष्ठापन सम्बन्धी एक ऐसे दो और पूर्व रात्रिक स्वाध्याय के तीन, ये अपराह्न के चौदह कृतिकर्म हो जाते हैं।

इन नियमों को ध्यान से देखें तो मुनियों के अहोरात्रि सम्बन्धी अट्ठाइस कृतिकर्म होते हैं जिन्हें अवश्य करणीय कर्म कहा जाता है।

जैन मुनि पिछली रात्रि में उठकर सर्वप्रथम 'अपररात्रिक स्वाध्याय' करते हैं। इस स्वाध्याय प्रतिष्ठापन क्रिया के अन्तर्गत लघु श्रुतभक्ति और लघु आचार्यभक्ति होती हैं। पुनः स्वाध्याय निष्ठापन क्रिया में मात्र लघु श्रुतभक्ति की जाती है। इसे 'भक्तित्रय' कहकर भी अभिहित किया जाता है। इन तीन भक्तिमूलक आचार संहिताओं के साथ तीन प्रकार के कृतिकर्म जुड़े हुए हैं। 'रात्रिक प्रतिक्रमण' में चार कृतिकर्म पाए जाते हैं। यथाक्रमानुसार इन्हें सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति और चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति के रूप में जाना जाता है।[15] रात्रियोग की निष्ठापना हेतु एक और कृतिकर्म योगीभक्ति का होता है। 'पौर्वाह्निक देववन्दना' के अन्तर्गत तीन प्रकार के कृतिकर्म, मध्याह्न देववंदना के दो कृतिकर्म, पुनः अपराह्न कालीन स्वाध्याय में तीन कृतिकर्म तथा दैवसिक प्रतिक्रमण में चार कृतिकर्म होते

---

14. वही, वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत आचारवृत्ति (602 संख्यक) पृष्ठ 441
15. विशेष जानकारी के लिए देखिए–दिगम्बर मुनि क्रिया विधि प्रकल्प (सम्पादक-संशोधक-डॉ. दलपतभाई कोठारी) अरिहंत प्रकाशन, 1979, पृष्ठ 178 तथा मूलाचार (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन), पृष्ठ 15

हैं। इसी तरह रात्रियोग प्रतिष्ठापना में योगभक्ति का एक, अपराह्निक देववन्दना के दो तथा पूर्वरात्रिक स्वाध्याय के तीन कृतिकर्म होते हैं। सम्पूर्ण एकलरूप में कुल मिलाकर अट्ठाईस कृतिकर्म हो जाते हैं।

पं. आशाधर कृत अनगार धर्मामृत में भी इस प्रकरण का उल्लेख किया गया है। कृतिकर्म की विधि बतलाते हुए षडावश्यक अधिकार के अन्तर्गत कहा गया है—

**दोणदं तु जधाजादं बारसावत्तमेव च।**
**चतुस्सिरं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजदे।।**[16]

इसका आशय है, यथाजात मुनि मन, वचन, काया की शुद्धिपूर्वक दो प्रणाम, बारह अवर्त और चार शिरोनति सहित कृतिकर्म को करता है।

इसकी विधि के बारे में कहा गया है—किसी भी क्रिया के प्रारम्भ में सर्वप्रथम प्रतिज्ञा की जाती है, पुनः पंचांग नमस्कार के उपरान्त, खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति के द्वारा सामायिक दण्डक मंत्र पढ़ा जाता है। फिर तीन आवर्त एक शिरोनति करते हुए सत्ताइस उच्छ्वास में नौ बार 'णमोकार' मंत्रपाठ उपरान्त कायोत्सर्ग की मुद्रा में पुनः पंचाग नमस्कार किया जाता है। पुनः साधक खड़े होकर तीन आवर्त, एक शिरोनति करके जिस भक्ति के लिए प्रतिज्ञा की थी, वह भक्ति पढ़ी जाती है। इस तरह एक भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग में प्रतिज्ञा के बाद और कायोत्सर्ग के बात दो बार पंचांग नमस्कार करने से 'दो प्रणाम हुए।' सामायिक दण्डक के प्रारम्भ तथा अन्त में एवं 'थोस्सामि स्तव' के प्रारम्भ और अन्त में तीन-तीन आवर्त और एक-एक शिरोनति करने से बारह आवर्त और चार शिरोनति एक कृतिकर्म के अन्तर्गत सन्निहित लक्षण हैं—। सरल शब्दों में कहे तो एक कृतिकर्म में इतनी क्रियाएँ होती हैं।[17]

**(ख) कृतिकर्म प्रयोग-प्रविधि—** "अथ पौर्वाह्निक देववंदनायां..........चैत्यभक्ति[18] कायोत्सर्गं करोम्यहम्"। उपरोक्त प्रतिज्ञा करने के उपरांत पंचांग या साष्टांग नमस्कार कर, पुनः खड़े होकर तीन

---

16. देखिए, Shivakumar, Ravindra S., Austerity and Penance : A Jain Perspective, p. 19-28 तथा मूलाचार, पृष्ठ 15
17. देखिए आर्यिका ज्ञानमती माताजी की व्याख्या, मूलाचार (आद्य उपोद्घात) पृष्ठ 15
18. क्रिया तथा भक्ति जिसके या जिनके साथ सम्पृक्त हों अथवा जिस व्यक्ति के साथ (विषयी) सम्यक् हों, उसी का उल्लेख करें।

आवर्त और एक शिरोनति करते हुए सामायिक पढ़ना चाहिए। सामायिक-पाठ इस प्रकार है—

सर्वप्रथम पंच नमस्कार मन्त्र (णमोकार मंत्र)—

**णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।**
**णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं।।**

तदुपरान्त 'चतुर्मंगल स्तव'— 'चत्तारि मंगलं'। इनमें चार प्रधान आधार हैं—

अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लागुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलीपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

फिर पाठ करेंगे समस्वर में—

"अड्ढाइज्जदीवदो समुद्देसु पण्णारसकम्म भूमिसु जाव अरिहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं, धम्माइरियाणं धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं धम्मवर चाउरंग चक्क वट्ठाणं देवहिदेवाणं पाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं। करेमि भंते! सामायियं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण कारेमि कीरतंपि ण समणुमणाणि, तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, जाव अरिहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।"[19]

यह पाठ करने के उपरान्त तीन आवर्त, एक शिरोनति करके सत्ताइस उच्छ्वास में नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करते हुए, पुनः तीन आवर्त, एक शिरोनति कर थोस्सामि स्तव पढ़ें। यहाँ आचार संहिता विवरण प्रदान करते समय हम 'थोस्सामि स्तव' को यहाँ पाठकों के लिए प्रस्तुत करते हैं—

---

19. विशेष जानकारी के लिए देखें—आर्यिका ज्ञानमती, दिगम्बर मुनि, दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) के अन्तर्गत मुनि आचार-संहिता अध्याय, साथ ही देखें मूलाचार, पृष्ठ 16

**थोस्सामि स्तव–**

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।1।।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मतित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिसरे चोबीसं चेव केवलिणो।।2।।

उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे।।3।।

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि।।4।।

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च।।5।।

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीण जरमरणा।
चोवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।।6।।

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गाणाणलाहं दिंतु समहिं च मे बोहिं।।7।।

चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।8।।[20]

**एकल बिहार में निषेध—** मूलाचार में स्पष्टरूप से (दिगम्बर) साधु के एकलबिहार पर पाबंदी लगाई गई है। इस नियम के अनुसार मूलाचार में कहा गया है—

सच्छंद गदागदी सयणणिसयणादाणभिक्खबोसरणे।
सच्छंद जंपरोचि य मा मे सत्तू वि एगागी।।150।।[21]

अर्थात् 'जो स्वच्छन्द गमनागमन करता है, जिसका उठना, बैठना, सोना आदि प्रवृत्तियां स्वच्छन्द हैं, जो आहार ग्रहण करने में एवं किसी भी वस्तु के उठाने-धरने और बोलने में स्वैर है ऐसा मेरा शत्रु भी एकाकी न रहे।'

---

20. वही, पृष्ठ 16
21. इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए देखिए– Ras, Shantaram Bhalchandra, Jain Monastic Jurisprudence, Jaina Cultural, Research Society, (B.H.U.) 1960 और त्यागी, डॉ. अमरपाल सिंह, जैन चिन्तन में आचरणशुद्धि का महत्व, पृष्ठ 165-179.

मूलाचारकर्ता अकेले (मूलतः दिगम्बर मुनि के लिए) परिव्राजन में कौन सी हानियाँ हैं— इसका भी उल्लेख करते हैं–

गुरु परिवादो सुदवुच्छेदो तित्थस्स भइलणा जउदा।
भिंभल कुसीलपासत्थदा य उस्सारंकप्पम्हि।।151।।[22]

अर्थात् 'स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति में गुरु की निन्दा, श्रुत का विनाश, तीर्थ की मलिनता, मूढ़ता, आकुलता, कुशीलता और पार्श्वस्थता आदि दोष आते हैं।'

इस गाथा का भावार्थ यह है किं जो मुनि आगम से विरुद्ध होकर अकेले विहार करते हैं उनके निमित्त से उनके दीक्षागुरु का अपमान, श्रुत-परम्परा का विच्छेद, जैन शासन की निन्दा ये दोष होते हैं तथा उस मुनि के अन्दर मूर्खता आदि दोष आ जाते हैं।

साथ ही मूलाचार में यथार्थ जीवन के स्तर पर एकलबिहारी साधु पर आने वाले विपत्तियों की चर्चा भी की गई है। इन आत्मविपत्तियों के बारे में कहा गया हैं—

कंटयखण्णुयपडिणियसाण गोणादि सप्पमेच्छेहिं।
पावइ आदविवत्ती विसेण व विसूइया चेव।।152।।[23]

उपरोक्त गाथा में यह बताया गया है कि निश्चय ही अकेले परिव्राजन करता हुआ मुनि काँटे से, ठूँठ से, मिथ्यादृष्टि, क्रोधी या विरोधी जनों द्वारा, कुत्ते या गौ आदि पशुओं से या साँप आदि हिंसक प्राणी से, या म्लेच्छ अर्थात् नीच-अज्ञानीजनों के द्वारा स्वयं को कष्ट में डाल लेता है। अकेले में भ्रान्तिपूर्वक आहार से, विष का प्रभाव शरीर को अस्वस्थ कर सकता है। इससे हैजा आदि रोगों से आत्मिक विपत्ति हो सकती है। आचारवृत्तिकार वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती प्राकृत गाथा में 'विसूइया चेव' (च-एव) शब्द का प्रयोग विशेष सोच समझकर किया है। एव' शब्द निश्चयार्थवाचक है।[24] इसका अर्थ है, निश्चय ही मुनि अकेले विहार करने पर कंटक, विष आदि से अपनी हानि कर बैठता है।

22. आचार्य वट्टकेर विरचित मूलाचार, सामाचाराधिकार, गाथा 51
23. वही, सामाचाराधिकार, गाथा 152
24. आचारवृत्ति में वसुनन्दि लिखते हैं— 'एवकारो निश्चयार्थः। निश्चयेनैकाकी विहरन् कण्टकादिभिर्विषण विसुचिकया वात्मविपत्ति प्राप्नोति'।। मूलाचार, सामाचाराधिकार

## 'मूलाचार' रचयिता पट्टकेर क्या आचार्य कुन्दकुन्द हैं?

'मूलाचार' के रचयिता कौन हैं, यह जैनविद्या के विशेषज्ञों में एक विचार्य विषय रहा है। मूलाचार रचयिता के रूप में आचार्य वट्टकेर के साथ-साथ प्रख्यात जैनाचार्य एवं सिद्धान्तवेत्ता आचार्य कुन्दकुन्द का नाम भी लिया जाता है। या तो दोनों आचार्यों ने एक ही नाम के (मूलाचार) दो अलग ग्रन्थों की रचना की अथवा दोनों में से किसी एक ने ऐसा भी हो सकता है कि दोनों नाम एक ही आचार्य से सम्पृक्त हो।

इसी विषय पर मीमांसा करते हुए पहले हम आचार्य कुन्दकुन्द के जीवन पर प्रकाश डालें–

प्राचीन जैन आचार्यों की परम्परा में आचार्य कुन्दकुन्द का नाम विशेष श्रद्धा से लिया जाता हैं। जैन परम्परा में चतुर्विंशति तीर्थंकर वर्धमान महावीर तथा गौतम गणधर के बाद आचार्य कुन्दकुन्द का नाम-स्मरण मंगलकारक माना जाता है। यथा–गणधर के बाद आचार्य कुन्दकुन्द का नाम-स्मरण मंगलकारक माना जाता है। यथा–गणधर के बाद आचार्य कुन्दकुन्द का नाम-स्मरण मंगलकारक माना जाता है। यथा–

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।[25]

(क्रमशः)

25. देखिए Nagesan, M. Raghava, 'On the Hymns of Jaina Canons', Journal of the Oriental Institute of Indian Studies, September, 1989 p. 245.

# कुवलय माला

श्री केवल मुनि

**कवलयमाला के साथ पाणिग्रहण :**

कुवलयमाला ने अन्दर से जबाव दिया–
चलती हूँ, इतनी जल्दी भी क्या है? एक घड़ी भी नहीं हुई।

एक घड़ी! रात्रि का प्रथम प्रहर बीतने वाला है। बहुत विश्राम कर लिया। जल्दी चलो।

रात्रि का प्रथम प्रहर सुनते ही हड़बड़ाकर कुवलयमाला कुमार के अंक से निकलकर उठ खड़ी हुई। विवश-सी चल दी। बाहर आते ही धायमाता ने मुस्कराकर कहा–
अब तो तुम्हारा तन-मन शीतल हो गया। ताप वेदना कम हो गई।

राजकुमारी ने इतना ही कहा–
तुम्हारी कृपा है, धायमाता।

कुवलयमाता राजमहल में जा पहुँची। कुमार कुवलयचन्द्र बी अपने कक्ष में पहुँच गया।

इसके अनन्तर दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओं में संकेतों के आदान-प्रदान होते रहे–कभी तांबूल के ऊपर नखच्छेद से नाम लिखकर भेजा जाता तो कभी किसी पत्र (पत्ते) पर कोई चित्र बनाकर।

इन्हीं प्रेम-संकेतों में शिशिरकाल व्यतीत हो गया। कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला तो इन प्रेम संकेतों में मग्न थे किन्तु राजा विजयसेन को पुत्री के विवाह की चिन्ता थी। एक दिन ज्योतिषी को बुलाकर पूछा-

कहिए महाराज! कब तक निकलेगा, शुभ लग्न पुत्री के विवाह का?

अभी निकालता हूँ। आपकी आज्ञा होनी चाहिए। कहकर पण्डितजी अपनी गणना में लग गए। विभिन्न दृष्टियों से विचार कर बोला–
महाराज! फाल्गुन शुक्ला पंचनी बुधवार का लग्न श्रेष्ठ है।

लग्न ज्ञात होते ही विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। एक ही तो पुत्री थी राजा विजयसेन की। खूब धूमधाम से उत्सवपूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ। दो दिल मिलकर एक हो गए। बीच की दूरी समाप्त हो गई।

अब दोनों पति-पत्नी–कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला–आमोद-प्रमोद और हास्यविनोद में दिन बिताने लगे। किन्तु सुख-भोगों में कुवलयचन्द्र अपने लर्त्तव्य को न भूला था। वह कुवलयमाला को जिनवाणी का मर्म भी समझाता रहता था। उसे अपना वचन याद था कि–हम पाँचों एक दूसरे को सद्धर्म की ओर प्रेरित करेंगे। इस वचन के पालन में वह गाफिल नहीं था। पति के प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण कुवलयमाला पर भी इच्छित प्रभाव पड़ रहा था। उसकी रुचि भी जिनधर्म की ओर हो गई थी। उसने सम्यक्त्व धारण कर लिया और शास्त्र-चर्चा में रुचि लेने लगी।

इस प्रकार धर्मपूर्वक सुख भोगते हुए कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला का समय व्यतीत हो रहा था।

एक दिन प्रतिहारी ने आकर कुमार से निवेदन किया–

कुंवरजी! अयोध्या से दूत आया है।

जल्दी, अन्दर भेज दो। कुमार ने आज्ञा दी।

दूत ने आदरपूर्वक प्रणाम करके एक पत्र कुमार के हाथ में दे दिया। पत्र को पहले तो उसने आदरपूर्वक सिर से लगाया और फिर खोलकर पढ़ने लगा।

पत्र में पिताजी का सन्देश था। लिखा था–शीघ्र जाओ। हम लोग तुम्हारे वियोग में बहुत दुःखी है।

माता-पिता की स्मृति में कुवलयचन्द्र की आँखें भर आई। दो आँसू लुढ़क पड़े। कुवलयमाला ने पति से पूछा–

स्वामी! क्या कोई अशुभ समाचार हूँ?

कुवलयचन्द्र ने पत्र उसके हाथ में दे दिया। कुवलयमाला ने पड़ा। सास-ससुर की दशा जानकर वह भी चिन्तित हो गई। बोली-

इसमें चिन्ता की क्या बात है। शीघ्र ही चलिए। मुझे भी आपके साथ-साथ सास-ससुर की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो जायगा।

(क्रमशः)

# तित्थयर वर्ष ३६
# अप्रैल २०१२ से सितम्बर २०१३

## निबन्ध


| क्र. सं. लेख | लेखक | पृ. सं. |
|---|---|---|
| १. अष्टापद | डॉ. लता बोथरा | ५ |
| २. हिन्दी की विकास प्रक्रिया में अपभ्रंश की केन्द्रीयता | डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य | ४१ |
| ३. पउमचरियं : एक सर्वेक्षण | डॉ. सागरमल जैन | ७७ |
| ४. क्या पउमचरियं श्वेताम्बर परम्परा का ग्रन्थ है? | डॉ. सागरमल जैन | ११३ |
| ५. अपभ्रंश का भाषिकी स्वरूप सन्दर्भ के विविध आयाम | डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य | १२३, |
| ६. उपांगसाहित्य : एक विश्लेषणात्मक विवेचन | डॉ. सागरमल जैन | १४९ |
| ७. जैशलमेर के कलापूर्ण मंदिर | भँवरलाल नाहटा | १५९, १८५ |
| ८. अहिंसा-मानव के सर्वांगीण विकास की पृष्ठभूमि | डॉ. लता बोथरा | २२१,२५७,३०४ ३२१, ३६५,४०१ |
| ९. जैन प्रतिमाविज्ञान | डॉ. मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी | २६५ |
| १०. जैन स्तूप | डॉ. धीरेन्द्र सिंह भण्डारी | २९३ |
| ११. जैनाचार्य विद्यानन्द : व्यक्ति काल व कृतियाँ | डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य | ३३९ |
| १२. जैन अपभ्रंश साहित्य का मध्ययुगीन हिन्दी कथानकों पर प्रभाव | डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य | ३७१ |
| १३. जैनाचार्य वट्टकेर-कृत मूलाचारः मनन और मीमांसा | डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य | ४१२ |


कथानक :


१. कुवलय माला ५४, ९४, १३८, १६८, १९८, २३२, २७०, ३१२ ३५४, ३८८,४२५

*With best compliments*

**arcadia shipping limited**

222, Tulsiani Chambers, Nariman Point,
Mumbai-400 021
Tel : +91 22 6658 0300 / Fax : +91 22 2287 2664
Email : arcadiashipping@vsnl.com

*Ship Owners, Ship Managers*

# JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

## English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   - Vol - 1 (satakas 1-2) Price : Rs. 150.00
   - Vol - 2 (satakas 3-6) 150.00
   - Vol - 3 (satakas 7-8) 150.00
   - Vol - 4 (satakas 9-11) ISBN : 978-81-922334-0-6 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism Price : Rs. 15.00
   ISBN : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 50.00
   ISBN : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda
   Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee-
   Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee
   Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee
   Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8 Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

## Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00

| | | | |
|---|---|---|---|
| 6. | Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat, | Price : Rs. | 45.00 |
| 7. | Ganesh Lalwani -- Panchdasi. | Price : Rs. | 100.00 |
| 8. | Rajkumari Begani-Yado ke Aine me. | Price : Rs. | 30.00 |
| 9. | Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra | Price : Rs. | 15.00 |
| 10. | Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm | Price : Rs. | 24.00 |
| 11. | Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika | Price : Rs. | 20.00 |
| 12. | Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2 | Price : Rs. | 250.00 |
| 13. | Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra | Price : Rs. | 50.00 |
| 14. | Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan | Price : Rs. | 50.00 |
| 15. | Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN: 978-81-922334-9-9 | Price : Rs. | 50.00 |
| 16. | Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh | Price : Rs. | |

## Bengali :

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | Ganesh Lalwani-Atimukta, | Price : Rs. | 40.00 |
| 2. | Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita | Price : Rs. | 20.00 |
| 3. | Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma. | Price : Rs. | 15.00 |
| 4. | Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma | Price : Rs. | 20.00 |
| 5. | Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra | Price : Rs. | 25.00 |
| 6. | Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita | Price : Rs. | 20.00 |
| 7. | Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti | Price : Rs. | 20.00 |

## Some Other Publications :

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir | Price : Rs. | 15.00 |
| 2. | Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan | Price : Rs. | 10.00 |
| 3. | Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma | Price : Rs. | 100.00 |
| 4. | Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali) | Price : Rs. | |
| 5. | Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali) | Price : Rs. | 50.00 |
| 6. | K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira | Price : Rs. | 25.00 |

**इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :**

| | | |
|---|---|---|
| अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका | वार्षिक | 500.00 |
| ISSN 0021 - 4043 | (आजीवन) | 5000.00 |
| हिन्दी मासिक पत्रिका | वार्षिक | 500.00 |
| ISSN 2277 - 7865 | (आजीवन) | 5000.00 |
| बंगला मासिक पत्रिका | वार्षिक | 200.00 |
| ISSN : 0975 - 8550 | (आजीवन) | 2000.00 |

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

**Creativity is a Modern Religion**

# Nahar

**Architects, Interiors, Consultants**

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

TITTHAYARA
Registered
Vol XXXVI No 12
25th March 201
No. KOL.RMS / 70/2013-15
R.N.I. 30181/77